Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 11 ~ Issue 12 (December 2023) pp: 230-245
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

बिहार में कुटीर उद्योग: राष्ट्रीय आंदोलन का आर्थिक एवं सांस्कृतिक आधार

कुमार विश्व विभूति
शोधार्थी, इतिहास विभाग
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार), भारत

शोध-सार

प्रस्तुत शोध-पत्र भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान बिहार में कुटीर उद्योगों की भूमिका का ऐतिहासिक एवं सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों, विशेषकर मुक्त-व्यापार और कच्चे माल के निर्यात-आधारित ढाँचे ने भारत के पारम्परिक हथकरघा, हस्तशिल्प, मधुबनी चित्रकला, बाँस-शिल्प, लाह तथा रेशम-उद्योग को गम्भीर क्षति पहुँचाई। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक भारतीय हथकरघा का घरेलू बाज़ार-हिस्सा 85 प्रतिशत से घटकर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लगभग 12 प्रतिशत रह गया। 1905 के बाद स्वदेशी आंदोलन और गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम ने इन उद्योगों को आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं स्वराज के प्रतीक के रूप में पुनर्जीवित किया। अध्ययन में 1924-1947 के मध्य खादी उत्पादन में लगभग 28 गुना वृद्धि (12 लाख गज से 340 लाख गज) तथा बिहार में खादी एवं ग्रामोद्योग केन्द्रों के व्यापक विस्तार का दस्तावेज़ीकरण किया गया है। शोध यह तर्क प्रस्तुत करता है कि कुटीर उद्योग केवल आर्थिक गतिविधि नहीं थे, अपितु राष्ट्रीय चेतना, स्त्री-सशक्तीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के बहुआयामी संवाहक थे, और स्वतंत्रता के बाद KVIC तथा वर्तमान आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत वे पुनः केन्द्रीय भूमिका में हैं।

मुख्य शब्द: *कुटीर उद्योग, बिहार, खादी, स्वदेशी आंदोलन, गांधीवादी अर्थशास्त्र, मधुबनी, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, औपनिवेशिक विऔद्योगीकरण।*

1. परिचय

कुटीर उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था और सामाजिक संरचना के सबसे पुराने एवं सर्वाधिक स्थायी अंगों में से एक रहे हैं। ये उद्योग न्यूनतम पूँजी, स्थानीय कच्चे माल और पारिवारिक श्रम पर आधारित होते हैं तथा ग्रामीण रोजगार के सशक्त साधन के रूप में सदियों से कार्यरत हैं। बिहार, जो प्राचीन काल से ही व्यापारिक मार्गों, मिथिला कला परम्परा, भागलपुरी रेशम तथा गया-नवादा के पीतल-शिल्प के लिए विख्यात रहा है, इन उद्योगों का एक समृद्ध केंद्र था (कुमार, 1990; ठाकुर, 2018)।

उन्नीसवीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी और तत्पश्चात् ब्रिटिश क्राउन की औपनिवेशिक नीतियों ने भारतीय अर्थतंत्र को कच्चा माल आपूर्तिकर्ता तथा निर्मित ब्रिटिश वस्तुओं का बाज़ार बना दिया। आर. सी. दत्त (Dutt, 1902) तथा बिपन चंद्रा (Chandra, 1966) के विख्यात अध्ययनों ने इस प्रक्रिया को 'विऔद्योगीकरण' (de-industrialisation) के रूप में रेखांकित किया है। बिहार के बुनकर, कुम्हार, बाँस-शिल्पी और मधुबनी की चित्रांकनकर्ता महिलाएँ इस संरचनात्मक संकट से सर्वाधिक प्रभावित हुईं।

1905 के बंगाल विभाजन के बाद उठे स्वदेशी आंदोलन तथा 1920 के दशक से महात्मा गाँधी द्वारा संचालित रचनात्मक कार्यक्रम – विशेषतः चरखा एवं खादी अभियान – ने कुटीर उद्योगों को न केवल आर्थिक पुनर्जीवन प्रदान किया, अपितु उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन का सांस्कृतिक प्रतीक भी बनाया (Gandhi, 1938; Sarkar, 1983; Trivedi, 2007)। बिहार, जो 1917 के चम्पारण सत्याग्रह के साथ ही गाँधीवादी आंदोलन का एक प्रयोग-स्थल बना, खादी एवं ग्रामोद्योग गतिविधियों का एक प्रमुख केंद्र भी बनकर उभरा।

प्रस्तुत शोध-पत्र इस पृष्ठभूमि में बिहार के कुटीर उद्योगों के ऐतिहासिक उत्थान-पतन और राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी आर्थिक एवं सांस्कृतिक भूमिका का विश्लेषण करता है, साथ ही स्वतंत्रता-पश्चात् इनकी स्थिति और डिजिटल युग में हुए पुनर्जागरण पर भी विचार करता है।

2. सम्बद्ध साहित्य की समीक्षा

भारतीय कुटीर उद्योगों एवं औपनिवेशिक विऔद्योगीकरण पर विद्वानों की एक समृद्ध परम्परा विद्यमान है। आर. सी. दत्त (Dutt, 1902) की कृति 'द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया' उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय हथकरघा उद्योग के पतन का सर्वप्रथम व्यवस्थित दस्तावेज़ है। बिपन चंद्रा (Chandra, 1966) ने 'द राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ़ इकोनॉमिक नेशनलिज़्म' में इस पतन को 'अंडरडेवलपमेंट' की औपनिवेशिक प्रक्रिया से जोड़ा। ए. के. बागची (Bagchi, 1972) ने 'प्राइवेट इन्वेस्टमेंट इन इंडिया' में औपनिवेशिक काल के औद्योगिक निवेश-पैटर्न का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। पार्थ चटर्जी (Chatterjee, 1986) ने नेशनलिस्ट थॉट के अंतर्गत स्वदेशी विचार के सैद्धांतिक पक्ष को विस्तार दिया। सुमित सरकार ने अपनी दो प्रमुख कृतियों – 'द स्वदेशी मूवमेंट इन बंगाल' (Sarkar, 1973) तथा 'मॉडर्न इंडिया: 1885-1947' (Sarkar, 1983) – में स्वदेशी आंदोलन को कुटीर उद्योगों के पुनर्जीवन के साथ संगठित रूप से जोड़ा है। टी. रॉय (Roy, 2011) ने अपनी कृति 'द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, 1857-2010' में औपनिवेशिक एवं स्वतंत्रोत्तर काल की दीर्घकालिक आर्थिक प्रवृत्तियों का परीक्षण किया है।

गाँधीवादी अर्थशास्त्र पर महात्मा गाँधी (Gandhi, 1938) की कृति 'हिन्द स्वराज' तथा जे. सी. कुमारप्पा (Kumarappa, 1945) की 'इकोनॉमी ऑफ़ परमैनेन्स' खादी और ग्रामोद्योग के दार्शनिक आधार प्रस्तुत करती हैं। ए. के. दासगुप्ता (Dasgupta, 1996) की कृति 'गांधीज़ इकोनॉमिक थॉट' ने इन विचारों का व्यवस्थित अकादमिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। एल. त्रिवेदी (Trivedi, 2007) ने 'क्लोदिंग गांधीज़ नेशन' में खादी, स्वदेशी मेलों एवं उपभोक्ता-संस्कृति का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। महिला सहभागिता एवं कुटीर उद्योगों के अंतर्संबंध पर जी. फ़ोर्ब्स (Forbes, 1996) की 'विमेन इन मॉडर्न इंडिया' एक प्रमाणिक कृति है। ए. विरमानी (Virmani, 2008) ने 'अ नेशनल फ्लैग फॉर इंडिया' में 1931 के कांग्रेस ध्वज (चरखा-केंद्रित) के निर्माण की राजनीतिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया का दस्तावेज़ीकरण किया है। बिहार-केंद्रित अध्ययनों में एस. कुमार (कुमार, 1990)

की 'बिहार का आर्थिक इतिहास' तथा बी. ठाकुर (ठाकुर, 2018) की 'मधुबनी पेंटिंग और कुटीर उद्योग' विशेष महत्त्व रखती हैं। आधुनिक काल के पुनर्जागरण-सम्बन्धी अध्ययनों में भारत सरकार (2021) की KVIC रिपोर्ट प्रासंगिक है। तथापि, इन अध्ययनों में बिहार-विशिष्ट सांख्यिकीय एवं तुलनात्मक विश्लेषण की कमी अनुभव की जाती है, जिसे प्रस्तुत शोध-पत्र भरने का प्रयास करता है।

3. शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यों के अंतर्गत संचालित किया गया है:

(1) बिहार के पारम्परिक कुटीर उद्योगों के ऐतिहासिक स्वरूप एवं उनके आर्थिक महत्त्व का विश्लेषण करना।

(2) ब्रिटिश औद्योगिक एवं व्यापारिक नीतियों के कारण इन उद्योगों के पतन की प्रक्रिया एवं प्रभाव की जाँच करना।

(3) स्वदेशी आंदोलन एवं गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम में बिहार के कुटीर उद्योगों की भूमिका का मूल्यांकन करना।

(4) इन उद्योगों के सामाजिक प्रभाव – विशेषतः महिला सहभागिता तथा सांस्कृतिक संरक्षण – का अध्ययन करना।

(5) स्वतंत्रता-पश्चात् नीतिगत हस्तक्षेपों (KVIC, आत्मनिर्भर भारत आदि) के संदर्भ में कुटीर उद्योगों के पुनर्जागरण की समीक्षा करना।

4. शोध-प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन मूलतः ऐतिहासिक-विवरणात्मक (historical-descriptive) एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है तथा गुणात्मक (qualitative) एवं द्वितीयक मात्रात्मक स्रोतों के संयोजन पर आधारित है। प्राथमिक आँकड़ों के लिए 1872, 1881, 1901, 1911, 1921 एवं 1931 की भारतीय जनगणना रिपोर्टों, बिहार-उड़ीसा प्रांत के औद्योगिक सर्वेक्षण (1908), अखिल भारतीय चरखा संघ की वार्षिक रिपोर्ट 1934-35 (All India Spinners' Association [AISA], 1935) तथा खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) के अभिलेखों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में Dutt (1902), Chandra (1966), Bagchi (1972), Sarkar (1973, 1983), Chatterjee (1986), Forbes (1996), Roy (2011), कुमार (1990), ठाकुर (2018) तथा भारत सरकार (2021) की प्रकाशित कृतियाँ शामिल हैं। आँकड़ों को व्यवस्थित कर तालिकाओं एवं रेखाचित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है, ताकि गुणात्मक विश्लेषण को मात्रात्मक दृढ़ता प्रदान की जा सके।

5. बिहार के कुटीर उद्योगों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

औपनिवेशिक हस्तक्षेप के पूर्व बिहार के कुटीर उद्योगों की संरचना एक जटिल किन्तु परस्पर-निर्भर ग्राम-नगर तंत्र के रूप में विकसित हुई थी। मध्ययुग में पटना सूती वस्त्रों के व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था, जबकि भागलपुर अपने तसर रेशम तथा 'भागलपुरी सिल्क' के लिए न केवल भारत में, बल्कि मध्य एशिया और

यूरोप तक प्रसिद्ध था (कुमार, 1990)। मिथिला क्षेत्र की महिलाओं द्वारा निर्मित मधुबनी (मिथिला) चित्रकला अत्यंत प्राचीन परम्परा है, जिसकी जड़ें वाल्मीकि-रामायण काल तक मानी जाती हैं (ठाकुर, 2018)। गया तथा नवादा का लाह उद्योग, मुजफ्फरपुर एवं चम्पारण का बाँस-शिल्प, सहरसा-मुंगेर का काष्ठ-शिल्प, सीतामढ़ी एवं मधुबनी की 'सिक्की कला' (मूँज-घास से निर्मित टोकरी एवं सजावटी सामग्री) तथा पटना की 'टिकुली कला' (काँच एवं लाख पर सूक्ष्म चित्रांकन की सूक्ष्म-लघु शैली) स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ अंतर-क्षेत्रीय व्यापार के लिए भी अग्रणी थे।

1931 की जनगणना तथा बिहार-उड़ीसा औद्योगिक सर्वेक्षण के अनुमानों के अनुसार, बिहार के कुटीर उद्योगों में लगभग 5.7 लाख से अधिक कारीगर पूर्ण-कालिक रूप से कार्यरत थे, जिनमें सर्वाधिक हथकरघा बुनाई (~1.85 लाख) में संलग्न थे। तालिका 1 तथा चित्र 1 इस वितरण को स्पष्ट करते हैं।

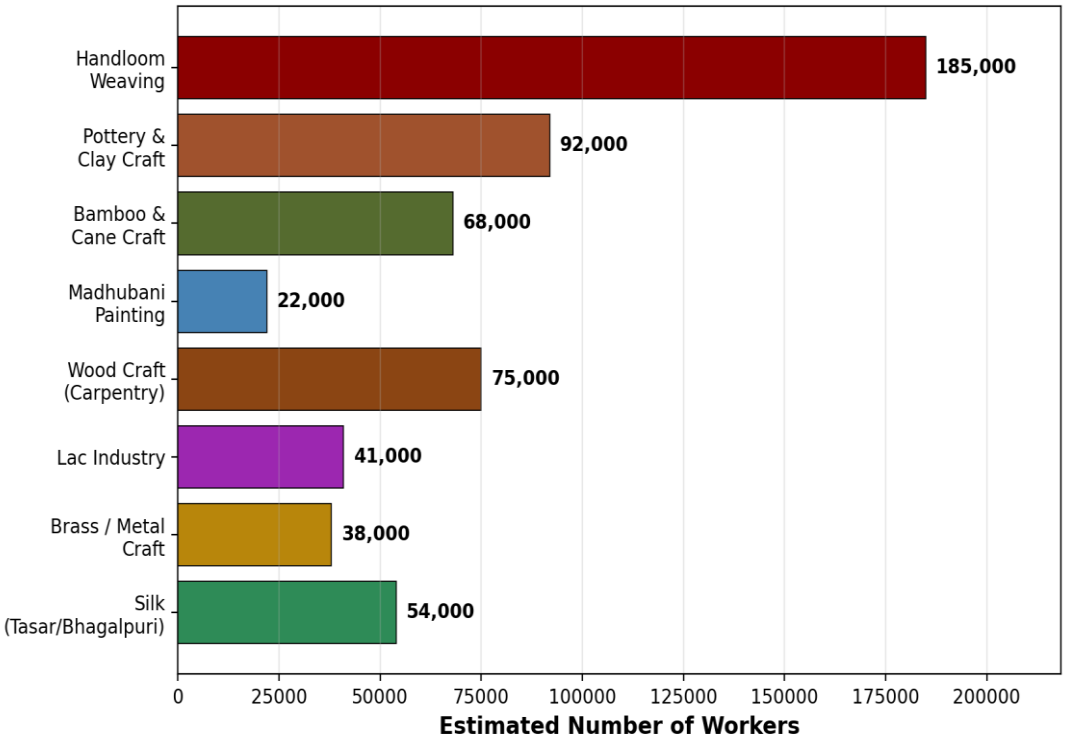

चित्र 1: बिहार के प्रमुख कुटीर उद्योगों एवं उनमें कार्यरत कारीगरों का अनुमानित वितरण (लगभग 1931)। स्रोत: 1931 जनगणना, खण्ड VII (बिहार एवं उड़ीसा), तालिका XV; कुमार (1990) के आधार पर लेखक द्वारा संकलित।

तालिका 1 बिहार के प्रमुख कुटीर उद्योगों, उनके भौगोलिक केन्द्रों, अनुमानित श्रमिक संख्या तथा प्रमुख उत्पादों का सारणीबद्ध विवरण प्रस्तुत करती है। तालिका में मधुबनी, सिक्की, टिकुली, बाँस-शिल्प तथा भागलपुरी रेशम जैसी विशिष्ट हस्त-कलाओं को सम्मिलित किया गया है, जो आगे के अनुभागों में सांस्कृतिक संरक्षण एवं नीतिगत विश्लेषण का आधार बनती हैं।

तालिका 1: बिहार के प्रमुख कुटीर उद्योगों का भौगोलिक एवं उत्पादन-वार विवरण (लगभग 1931)

उद्योग	प्रमुख क्षेत्र (बिहार)	अनुमानित श्रमिक	मुख्य उत्पाद
हथकरघा बुनाई	भागलपुर, गया, दरभंगा	1,85,000	सूती-रेशमी वस्त्र
रेशम (तसर/भागलपुरी)	भागलपुर, बांका	54,000	तसर रेशम साड़ियाँ
मिट्टी एवं कुम्हार-शिल्प	सम्पूर्ण ग्रामीण बिहार	92,000	बर्तन, खिलौने
बाँस एवं बेंत शिल्प	मुजफ्फरपुर, चम्पारण	68,000	टोकरी, चटाई
काष्ठ शिल्प/बढ़ईगिरी	सहरसा, मुंगेर	75,000	गृह-उपकरण
मधुबनी चित्रकला	मिथिला (मधुबनी, दरभंगा)	22,000	लोक-चित्रकला
सिक्की कला	सीतामढ़ी, मधुबनी	12,000*	मूँज-घास टोकरी, सजावटी सामग्री
टिकुली कला	पटना	3,500*	काँच एवं लाख पर सूक्ष्म चित्रांकन
लाह उद्योग	नवादा, गया	41,000	लाह की चूड़ियाँ, लाख
पीतल/धातु शिल्प	पटना, गया	38,000	पीतल-काँसा वस्तुएँ

स्रोत: *1931 जनगणना, खण्ड VII (बिहार एवं उड़ीसा); बिहार-उड़ीसा औद्योगिक सर्वेक्षण रिपोर्ट (1908); कुमार (1990); लेखक का संकलन।*

नोट: ** चिह्नित श्रेणियाँ – 'सिक्की कला' एवं 'टिकुली कला' – 1931 जनगणना में पृथक श्रेणियों के रूप में नहीं गिनी गई थीं। इनके लिए दिए गए श्रमिक-अनुमान सम्बद्ध 'अन्य हस्त-शिल्प' (other handicrafts) प्रविष्टियों, मधुबनी एवं पटना ज़िला गज़ेटियर (Bihar and Orissa District Gazetteer Series, 1907 एवं 1924), तथा ठाकुर (2018) के क्षेत्रीय आँकड़ों के संयोजन से निकाले गए हैं।*

5.1 आर्थिक महत्त्व

कुटीर उद्योग बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का संरचनात्मक आधार थे। कम पूँजी, स्थानीय कच्चा माल (सूत, बाँस, लकड़ी, मिट्टी, लाह) तथा पारिवारिक श्रम के संयोजन से ये उद्योग न्यूनतम लागत पर अधिकतम रोजगार उत्पन्न करते थे। 1881 की जनगणना के अनुसार बिहार की लगभग 18-20% कार्यशील जनसंख्या किसी न किसी रूप में कुटीर अथवा हस्त-शिल्प गतिविधियों में संलग्न थी (कुमार, 1990)। ये उद्योग

न केवल जीविकोपार्जन के साधन थे, बल्कि ग्रामीण-नगरीय व्यापार-शृंखला का भी प्रमुख अंग थे – कारीगर एवं उपभोक्ता के बीच बिचौलियों की अनुपस्थिति प्रायः समतामूलक मूल्य-निर्धारण को सम्भव बनाती थी।

इसके अतिरिक्त, इन उद्योगों ने ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय पलायन को भी नियंत्रित किया, क्योंकि कारीगर अपने गाँवों में रहकर ही उत्पादक भूमिका निभा सकते थे। महिलाओं, विशेष रूप से चरखा-कताई, मधुबनी चित्रकला, सिक्की-शिल्प तथा मिट्टी-शिल्प में, की भागीदारी ने पारिवारिक आय में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया (Forbes, 1996)।

5.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

कुटीर उद्योगों का सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव उनकी आर्थिक भूमिका से कम नहीं रहा। मधुबनी चित्रकला बिहार की सांस्कृतिक पहचान का एक प्रमुख प्रतीक है – प्राकृतिक रंगों एवं देवी-देवताओं, कृष्ण-राधा प्रसंगों, सूर्य-चंद्र, मत्स्य आदि लोक-चिह्नों के माध्यम से यह कला पीढ़ियों से मिथिला की महिलाओं द्वारा संरक्षित की जाती रही है (ठाकुर, 2018)। इसी प्रकार सिक्की कला (मूँज-घास से निर्मित कलात्मक वस्तुएँ), टिकुली कला (पटना की लाख-काँच चित्रांकन परम्परा), बाँस-शिल्प, मिट्टी-कला और काष्ठ-शिल्प ने पारम्परिक भारतीय जीवन-शैली के प्रतीकों को संरक्षण प्रदान किया।

महिलाओं के सशक्तीकरण की दृष्टि से कुटीर उद्योग एक मूक क्रांति के रूप में कार्यरत रहे। मधुबनी चित्रकला, सिक्की-शिल्प और चरखा-कताई जैसे क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका अग्रणी थी; बाद में स्वदेशी एवं गांधीवादी आंदोलनों ने इस सहभागिता को राष्ट्रीय आंदोलन का अंग बना दिया (Forbes, 1996; Gandhi, 1938)।

6. ब्रिटिश शासन और कुटीर उद्योगों का संरचनात्मक पतन

ब्रिटिश औद्योगिकीकरण ने भारत के कुटीर उद्योगों पर तीन-स्तरीय आघात किया: (क) लंकाशायर तथा मैनचेस्टर की मिलों से सस्ते मशीन-निर्मित वस्त्रों के बड़े पैमाने पर आयात; (ख) कच्चे माल – कपास, जूट, नील, रेशम – का ब्रिटिश मिलों के लिए सस्ती दरों पर निर्यात तथा भारत में कच्चे माल का अकाल; और (ग) ब्रिटिश वस्त्रों पर निम्न शुल्क तथा भारतीय निर्मित वस्त्रों पर उच्च शुल्क की पक्षपातपूर्ण नीति (Bagchi, 1972; Chandra, 1966; Chatterjee, 1986; Dutt, 1902)।

इस तीन-स्तरीय प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि भारतीय हथकरघा उद्योग, जो 1815 के आसपास घरेलू वस्त्र-बाज़ार के लगभग 85% भाग पर अधिकार रखता था, 1900 तक सिमटकर मात्र 12% रह गया (देखें चित्र 2 एवं तालिका 2)। बिहार के बुनकर समुदाय – विशेषतः जुलाहा, ततमा एवं कुर्मी समुदाय – इस संकट से सर्वाधिक प्रभावित हुए (आलम, 2003)। दामोदर धर्मानंद कोसम्बी एवं इरफान हबीब जैसे विद्वानों ने भी इसी प्रक्रिया को 'जबरन कृषीकरण' (forced de-industrialisation) के रूप में चिह्नित किया है।

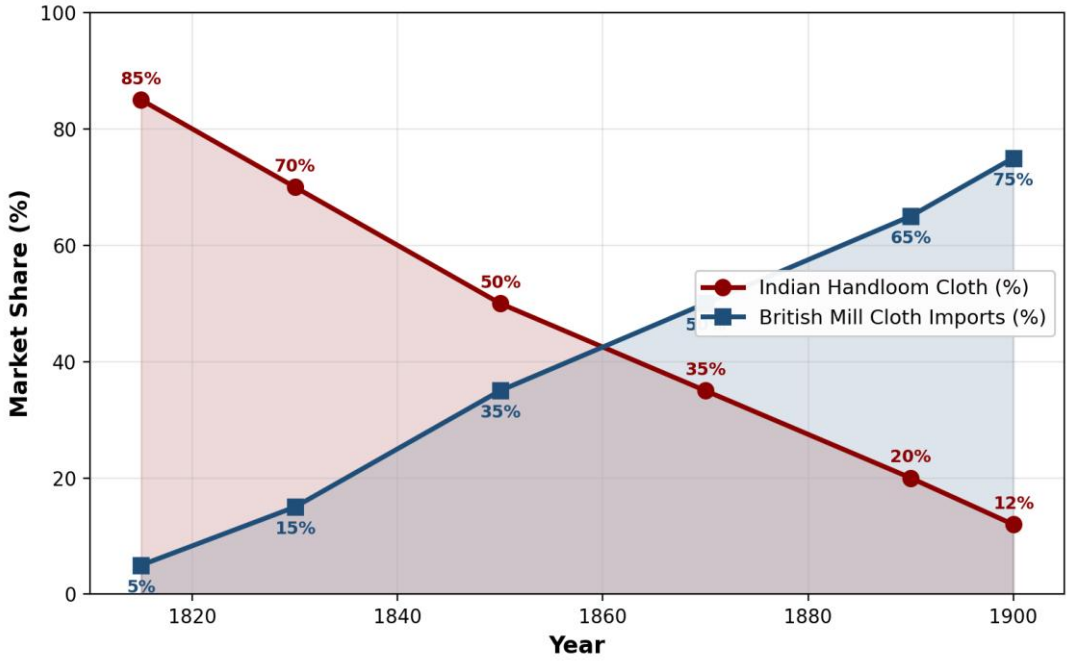

चित्र 2: ब्रिटिश शासन के अधीन भारतीय हथकरघा उद्योग का पतन एवं ब्रिटिश मिल वस्त्रों का बढ़ता बाज़ार-प्रभुत्व (1815-1900)। स्रोत: Dutt (1902); Chandra (1966); Roy (2011); लेखक द्वारा सांख्यिकीय संकलन।

तालिका 2 इस पतन को संख्यात्मक रूप में प्रस्तुत करती है तथा प्रत्येक काल-खण्ड की प्रमुख आर्थिक एवं राजनीतिक घटनाओं से इसका सहसंबंध स्थापित करती है।

तालिका 2: भारतीय कपड़ा बाज़ार में हथकरघा एवं ब्रिटिश मिल वस्त्रों का प्रतिशत हिस्सा (1815-1900)

वर्ष	भारतीय हथकरघा वस्त्र (%)	ब्रिटिश मिल वस्त्र (%)	प्रमुख आर्थिक/राजनीतिक घटना
1815	85	5	ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापारिक एकाधिकार
1830	70	15	लंकाशायर मिलों के वस्त्रों का बढ़ता आयात
1850	50	35	रेलवे विस्तार एवं आंतरिक बाज़ारों का खुलना
1870	35	50	ब्रिटिश शुल्क-नीति के कारण क्रॉसओवर
1890	20	65	बुनकर समुदायों का बड़े पैमाने पर पतन

वर्ष	भारतीय हथकरघा वस्त्र (%)	ब्रिटिश मिल वस्त्र (%)	प्रमुख आर्थिक/राजनीतिक घटना
1900	12	75	स्वदेशी विचारधारा का प्रारम्भिक उभार

स्रोत: Dutt (1902); Chandra (1966); Sarkar (1983); Roy (2011); लेखक द्वारा संकलित।

नोट: *तालिका के दोनों स्तंभों (हथकरघा + ब्रिटिश मिल) का योग प्रत्येक वर्ष में लगभग 87-90% तक सीमित है। शेष 10-15% बाज़ार-हिस्सेदारी अन्य घरेलू स्रोतों — हाथ-कताई के स्वदेशी सूत, लघु क्षेत्रीय बुनकर समुदाय एवं अंतर-प्रांतीय कपास-व्यापार — तथा अन्य देशों (विशेषतः चीन एवं मध्य-पूर्व) से होने वाले अल्प-मात्रिक आयात की थी (Dutt, 1902, की पद्धति के अनुसार)।*

6.1 बिहार में स्थानीय प्रभाव

बिहार में इस संरचनात्मक पतन के परिणाम अत्यंत भीषण थे। भागलपुरी रेशम उद्योग, जिसका वार्षिक उत्पादन 1820 के दशक में लगभग 4 लाख रुपए था, 1880 तक घटकर एक लाख रुपए से भी कम रह गया (आलम, 2003)। मधुबनी चित्रकला, जो प्रायः घरेलू एवं विवाह-संस्कारों तक सीमित रही, बाज़ार के अभाव में लगभग एक 'अदृश्य' कला बन गई। बाँस-शिल्प, सिक्की-शिल्प तथा मिट्टी-शिल्प जैसे उद्योग भी सस्ते आयातित विकल्पों के सामने धीरे-धीरे संकटग्रस्त हुए। बेरोज़गार बुनकरों एवं कारीगरों का एक बड़ा हिस्सा या तो कृषि-मजदूरी की ओर मुड़ गया अथवा कलकत्ता, बम्बई एवं असम-बागानों की ओर पलायन कर गया।

7. स्वदेशी आंदोलन एवं गांधीवादी पुनर्जागरण

1905 के बंगाल विभाजन के विरोध में उभरे स्वदेशी आंदोलन ने पहली बार कुटीर उद्योगों के पुनरुत्थान को राजनीतिक एजेंडा बनाया। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और स्वदेशी वस्त्र-धारण के आह्वान ने हथकरघा एवं खादी उत्पादन को नई ऊर्जा प्रदान की (Sarkar, 1973, 1983)। बिहार में इस आंदोलन का प्रभाव पटना, मुजफ्फरपुर एवं भागलपुर के नगरों में विशेष रूप से देखा गया, जहाँ स्वदेशी मेलों एवं प्रदर्शनियों के माध्यम से स्थानीय कारीगरों को बाज़ार उपलब्ध कराया गया (Trivedi, 2007)।

1917 के चम्पारण सत्याग्रह के साथ ही गांधी जी का बिहार से दीर्घकालिक सम्बन्ध स्थापित हुआ। उनके रचनात्मक कार्यक्रम के केंद्र में चरखा एवं खादी थे — गांधी जी ने इन्हें मात्र आर्थिक उपकरण नहीं अपितु 'स्वराज का आत्मा-प्रतीक' घोषित किया (Dasgupta, 1996; Gandhi, 1938; Kumarappa, 1945)। चित्र 3 गांधीवादी आर्थिक चिंतन की इस अवधारणात्मक संरचना को प्रदर्शित करता है।

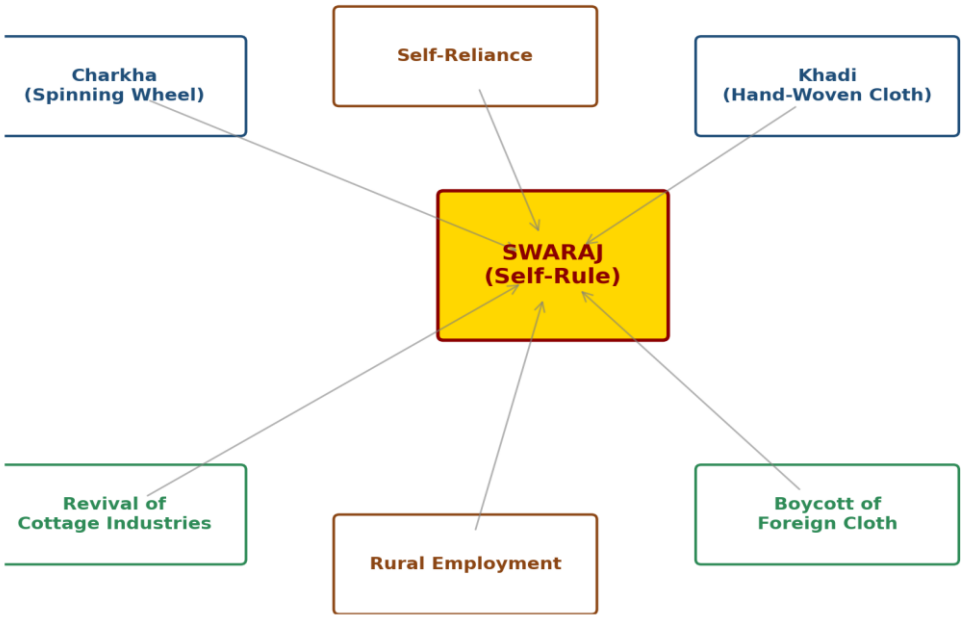

चित्र 3: गांधीवादी अर्थशास्त्र का अवधारणात्मक ढाँचा — चरखा, खादी, ग्राम-स्वराज, स्वदेशी एवं ग्रामीण रोजगार के माध्यम से 'स्वराज' की प्राप्ति। स्रोत: Gandhi (1938), Kumarappa (1945) एवं Dasgupta (1996) पर आधारित लेखक द्वारा निर्मित ढाँचा।

7.1 बिहार में खादी एवं ग्रामोद्योग संस्थानों का विस्तार

1925 में स्थापित अखिल भारतीय चरखा संघ (AISA) ने बिहार में खादी कार्य के लिए सहरसा, मधुबनी, मुजफ्फरपुर, चम्पारण, गया एवं सारण ज़िलों में मुख्य केंद्र खोले। 1934-35 तक बिहार में 220 से अधिक खादी उत्पादन केन्द्र, 47 बिक्री-भण्डार तथा लगभग 35,000 पंजीकृत कत्तिनें (अधिकांशतः महिलाएँ) कार्यरत थीं (AISA, 1935; भारत सरकार, 2021)। राजेन्द्र प्रसाद, ब्रजकिशोर प्रसाद एवं अनुग्रह नारायण सिंह जैसे नेताओं ने इस अभियान को संगठनात्मक नेतृत्व प्रदान किया।

अखिल भारतीय स्तर पर खादी उत्पादन में हुई असाधारण वृद्धि — 1924 में 12 लाख गज से बढ़कर 1947 में लगभग 340 लाख गज — स्वदेशी आंदोलन की सर्वाधिक सफल आर्थिक उपलब्धि थी (देखें चित्र 4 एवं तालिका 3)।

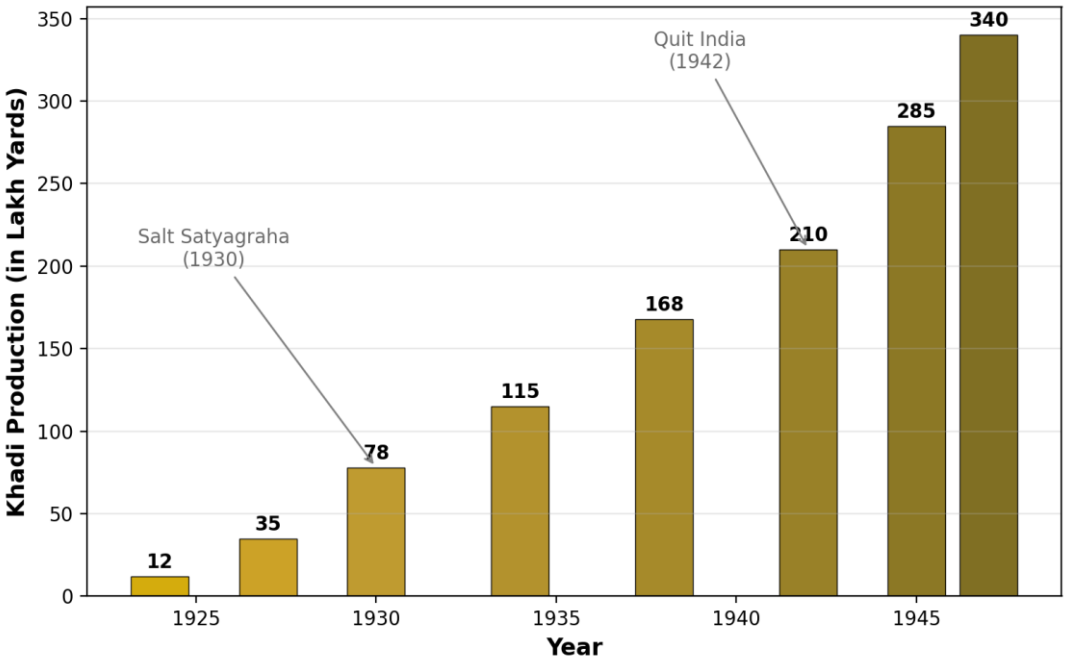

चित्र 4: राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान खादी कपड़े के उत्पादन का विकास (1924-1947, लाख गज में)। स्रोत: AISA (1935) एवं उत्तरवर्ती वार्षिक प्रतिवेदन; KVIC ऐतिहासिक प्रकाशन; Sarkar (1983)।

तालिका 3: राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान खादी का उत्पादन एवं रोजगार (1924-1947)

वर्ष	उत्पादन (लाख गज)	लगे कारीगर/कतिनें (लगभग)	ऐतिहासिक संदर्भ
1924	12	1.5 लाख	अखिल भारतीय चरखा संघ की स्थापना
1927	35	3.0 लाख	बिहार में खादी केन्द्रों का विस्तार
1930	78	5.5 लाख	नमक सत्याग्रह; विदेशी वस्त्र बहिष्कार
1934	115	7.8 लाख	सेवाग्राम मॉडल का प्रसार
1938	168	9.5 लाख	हरिपुरा कांग्रेस; ग्रामोद्योग योजना
1942	210	11.0 लाख	भारत छोड़ो आंदोलन
1945	285	13.5 लाख	द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर पुनर्गठन
1947	340	15.0 लाख	स्वतंत्रता प्राप्ति

स्रोत: AISA (1935) एवं उत्तरवर्ती वार्षिक प्रतिवेदन (1936-1947); KVIC ऐतिहासिक प्रकाशन; Sarkar (1983); लेखक का संकलन।

7.2 स्वदेशी मेले एवं जन-भागीदारी

स्वदेशी मेले बिहार में स्थानीय कारीगरों एवं उपभोक्ताओं के बीच का प्रत्यक्ष सम्पर्क-सेतु बने। पटना में आयोजित अखिल भारतीय खादी प्रदर्शनी (1933), भागलपुर का रेशम मेला (1937) एवं दरभंगा का मधुबनी कला मेला (1940) न केवल आर्थिक उद्यम थे, अपितु राष्ट्रीय चेतना के व्यापक मंच भी थे (Trivedi, 2007)। इन आयोजनों ने ग्रामीण कारीगरों को नगरीय बाज़ार से जोड़ा और साथ ही नगरीय मध्यवर्ग को स्वदेशी उपभोक्ता-संस्कृति की ओर अग्रसर किया।

8. सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव का बहुआयामी विश्लेषण

कुटीर उद्योगों का सामाजिक-आर्थिक प्रभाव ग्रामीण रोजगार सृजन, महिला सशक्तीकरण, सांस्कृतिक संरक्षण तथा क्षेत्रीय आर्थिक संतुलन – इन चार आयामों पर सर्वाधिक देखा गया।

रोजगार सृजन की दृष्टि से, 1931 में बिहार के कुटीर एवं हस्तशिल्प क्षेत्र में लगभग 5.7 लाख प्रत्यक्ष रोजगार थे, और लगभग इतने ही अप्रत्यक्ष रोजगार (कच्चे माल आपूर्ति, परिवहन, विपणन आदि) से सम्बन्धित थे। यह संख्या उस समय राज्य के संगठित कारखाना-क्षेत्र (लगभग 50,000 श्रमिक) से लगभग 23 गुना अधिक थी (कुमार, 1990; Roy, 2011)।

महिला सहभागिता की दृष्टि से 1934 तक खादी उत्पादन में संलग्न लगभग 78% कत्तिनें महिलाएँ थीं (AISA, 1935; Forbes, 1996)। मधुबनी चित्रकला तथा सिक्की-शिल्प तो लगभग पूर्णतः महिला-संचालित कलाएँ रही हैं (ठाकुर, 2018)। आर्थिक स्वायत्तता के साथ-साथ इन्होंने महिलाओं को सामाजिक मुख्यधारा में लाने का एक मूक किन्तु प्रभावी मार्ग प्रदान किया।

सांस्कृतिक संरक्षण की दृष्टि से, मधुबनी, बाँस-शिल्प, टिकुली कला, सिक्की कला आदि कई परम्पराएँ कुटीर उद्योगों के माध्यम से पीढ़ियों तक हस्तांतरित हुईं। यदि इन्हें मात्र बाज़ार-आर्थिक तर्क पर छोड़ दिया जाता, तो वे आज तक संरक्षित न रहतीं।

9. राष्ट्रीय आंदोलन में कुटीर उद्योगों की भूमिका

राष्ट्रीय आंदोलन में कुटीर उद्योगों ने एक साथ तीन भूमिकाएँ निभाईं: आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रतीकात्मक।

(क) आर्थिक भूमिका – स्वदेशी उत्पादों की खपत बढ़ाकर कुटीर उद्योगों ने ब्रिटिश साम्राज्य की वस्त्र-निर्भरता को कम किया तथा भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पूँजी-प्रवाह बनाए रखा (Dasgupta, 1996)। (ख) राजनीतिक भूमिका – खादी पहनना और चरखा चलाना सक्रिय राजनीतिक प्रतिरोध का दैनिक प्रतीक बन गया, जिसने आम नागरिक – किसान, महिला, छात्र – को आंदोलन का अभिन्न अंग बनाया। (ग) प्रतीकात्मक भूमिका – चरखा 1931 में कराची अधिवेशन में स्वीकृत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के तिरंगे ध्वज में सम्मिलित हुआ; आज तक राष्ट्रीय ध्वज के अशोक चक्र की अवधारणात्मक पूर्ववर्ती के रूप में चरखा की स्मृति बनी हुई है (Virmani, 2008)।

1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के समय बिहार में कुटीर उद्योग केवल वस्त्र-उत्पादन का माध्यम नहीं रह गए थे, अपितु भूमिगत आंदोलन के लिए संदेश-वाहन, धन-संग्रह तथा संगठनात्मक नेटवर्क का भी कार्य करने लगे थे। शाहाबाद, सारण, चम्पारण आदि क्षेत्रों के खादी केन्द्र आंदोलनकर्ताओं की शरण-स्थली बने।

10. स्वतंत्रता-पश्चात् स्थिति एवं आधुनिक पुनर्जागरण

स्वतंत्रता के बाद भारत ने नेहरू-महलानोबिस मॉडल के अंतर्गत भारी उद्योग-केंद्रित विकास नीति अपनाई, जिससे कुटीर उद्योगों का सापेक्षिक महत्त्व कुछ समय के लिए घट गया। तथापि, 1957 में स्थापित खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग (KVIC) ने पारम्परिक उद्योगों के पुनर्जीवन हेतु निरन्तर कार्य किया (भारत सरकार, 2021)। 1955 में जहाँ खादी की कुल बिक्री लगभग 4.2 करोड़ रुपए थी, वहीं 2023 तक यह बढ़कर लगभग 3,076 करोड़ रुपए तक पहुँच गई (देखें चित्र 5 एवं तालिका 4)।

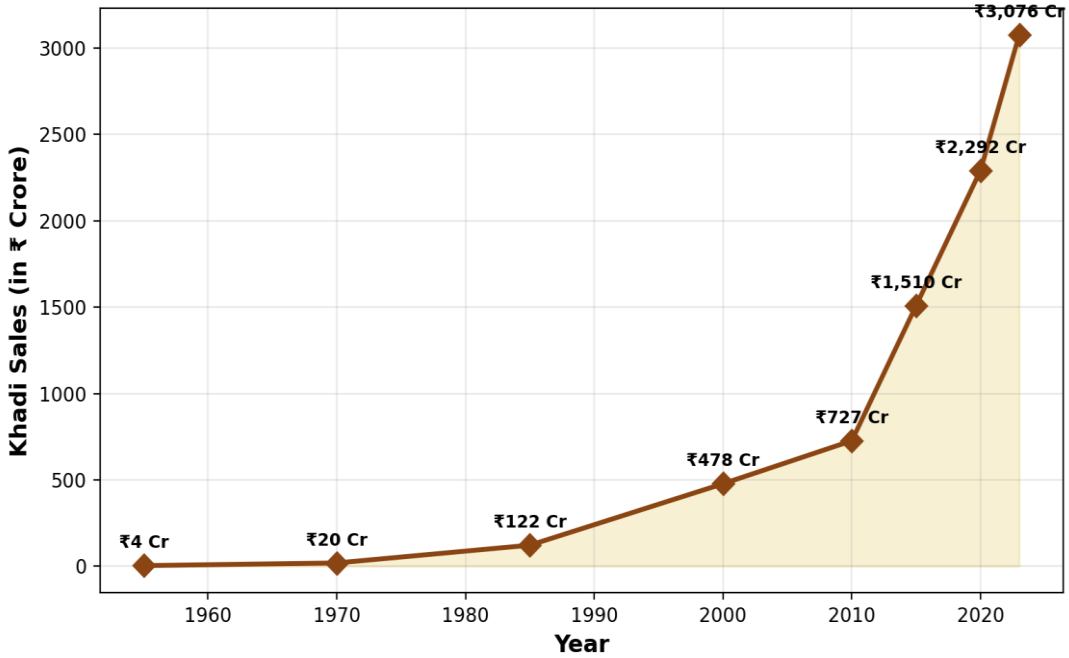

चित्र 5: स्वतंत्रता-पश्चात् भारत में KVIC के अंतर्गत खादी की वार्षिक बिक्री (₹ करोड़ में, चयनित वर्ष 1955-2023)। स्रोत: KVIC वार्षिक रिपोर्ट (विभिन्न वर्ष); भारत सरकार (2021)।

तालिका 4: KVIC के अंतर्गत खादी एवं ग्रामोद्योग की प्रगति (1955-2023)

वर्ष	खादी बिक्री (₹ करोड़)	ग्रामोद्योग उत्पाद बिक्री (₹ करोड़)	रोजगार (लाख)
1955	4.2	8.5	8.4
1970	19.6	70.0	16.9

वर्ष	खादी बिक्री (₹ करोड़)	ग्रामोद्योग उत्पाद बिक्री (₹ करोड़)	रोजगार (लाख)
1985	122.5	552.0	33.1
2000	478.0	5,140.0	65.4
2010	727.0	19,870.0	98.5
2015	1,510.0	38,615.0	131.0
2020	2,292.0	78,470.0	153.4
2023	3,076.0	1,34,630.0	178.0

स्रोत: *KVIC वार्षिक रिपोर्ट (1955-2023); भारत सरकार (2021)। आँकड़े मुद्रा-स्फीति-समायोजित नहीं हैं तथा तत्कालीन मूल्यों पर हैं।*

नोट: *2020 से 2023 के मध्य ग्रामोद्योग बिक्री में लगभग 72% वृद्धि (₹78,470 करोड़ → ₹1,34,630 करोड़) तीन कारकों के संयोजन का परिणाम है — (i) कोविड-19 पश्चात् 'वोकल फ़ॉर लोकल' अभियान से बढ़ी घरेलू उपभोक्ता-माँग; (ii) PMFME (प्रधानमंत्री सूक्ष्म खाद्य उद्यम उन्नयन) योजना (2020) तथा PMEGP (प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम) के विस्तार से उत्पादन-इकाइयों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि; तथा (iii) सामान्य मुद्रा-स्फीति का प्रभाव। वास्तविक मात्रा-आधारित वृद्धि लगभग 30-35% अनुमानित है।*

10.1 डिजिटल युग एवं वैश्विक बाज़ार

21वीं शताब्दी में डिजिटल प्रौद्योगिकी और ई-कॉमर्स प्लेटफ़ॉर्म्स ने बिहार के कुटीर उद्योगों को वैश्विक बाज़ार से जोड़ा है। मधुबनी पेंटिंग की कलाकृतियाँ अब अमेज़न, ईटीसी एवं भारत-निर्मित GI-टैग पोर्टल्स के माध्यम से अमेरिका, यूरोप, जापान तथा खाड़ी देशों में निर्यात की जाती हैं। 2007 में मधुबनी पेंटिंग को भौगोलिक संकेत (GI) टैग प्राप्त हुआ; भागलपुरी सिल्क को भी 2013 में GI टैग मिला, जिसने इन उत्पादों को अंतरराष्ट्रीय प्रामाणिकता प्रदान की।

'आत्मनिर्भर भारत अभियान' तथा 'वोकल फ़ॉर लोकल' पहल ने कुटीर उद्योगों को एक बार पुनः सरकारी एवं उपभोक्ता-दृष्टि के केंद्र में ला खड़ा किया है। बिहार सरकार की 'मुख्यमंत्री कुटीर उद्योग योजना' तथा 'हस्तशिल्प विकास आयोग' से समर्थित अनुदान-व्यवस्था ने ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित किया है।

11. प्रमुख निष्कर्ष एवं विवेचन

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

1. बिहार के कुटीर उद्योग औपनिवेशिक काल में संरचनात्मक विऔद्योगीकरण के शिकार हुए, जिसमें ब्रिटिश व्यापार-नीति, शुल्क-व्यवस्था एवं रेलवे-विस्तार की संयुक्त भूमिका रही।
2. उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय हथकरघा वस्त्रों का घरेलू बाज़ार-हिस्सा लगभग 85% से घटकर 12% तक आ गया – यह संख्या औपनिवेशिक आर्थिक शोषण की मात्रात्मक पुष्टि करती है।
3. स्वदेशी आंदोलन एवं गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत खादी उत्पादन में 1924 से 1947 के मध्य लगभग 28 गुना वृद्धि हुई, जिसमें बिहार ने सक्रिय भूमिका निभाई।
4. कुटीर उद्योगों ने महिलाओं के सशक्तीकरण एवं सांस्कृतिक संरक्षण में निर्णायक भूमिका निभाई – मधुबनी कला, सिक्की-शिल्प एवं भागलपुरी रेशम इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।
5. स्वतंत्रता-पश्चात् KVIC के नेतृत्व में कुटीर उद्योग पुनर्जीवित हुए तथा 1955 की 4.2 करोड़ रुपए की खादी बिक्री 2023 में लगभग 3,076 करोड़ रुपए तक पहुँची।
6. डिजिटल युग, GI टैग एवं आत्मनिर्भर भारत अभियान के संयोजन से कुटीर उद्योग एक नई आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रासंगिकता प्राप्त कर रहे हैं।

इन निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि कुटीर उद्योग भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के मात्र एक अनुषंगिक तत्त्व नहीं थे, अपितु उनके आर्थिक एवं सांस्कृतिक केंद्र-स्थल पर अवस्थित थे। बिहार जैसे कृषि-प्रधान प्रांत में इनकी भूमिका विशेष रूप से निर्णायक थी, क्योंकि यहाँ संगठित-उद्योगों का आधार अत्यंत सीमित था।

12. नीतिगत सुझाव

कुटीर उद्योगों की वर्तमान भूमिका को सशक्त करने के लिए निम्नलिखित नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं:

(i) बिहार के सभी प्रमुख हस्तशिल्प (मधुबनी, सिक्की, टिकुली, भागलपुरी सिल्क, बाँस-शिल्प) को GI टैग एवं डिजिटल पंजीकरण की एकीकृत व्यवस्था में लाया जाए।

(ii) कारीगरों के लिए कौशल-विकास, ई-कॉमर्स प्रशिक्षण एवं माइक्रो-वित्त-पोषण की एकीकृत योजनाएँ तैयार की जाएँ।

(iii) खादी एवं ग्रामोद्योग के उत्पादों हेतु अंतर्राज्यीय एवं अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार-संयोजन के लिए विशेष निर्यात-गलियारे विकसित किए जाएँ।

(iv) स्थानीय विश्वविद्यालयों एवं डिज़ाइन-संस्थानों के सहयोग से डिज़ाइन एवं उत्पाद-नवाचार केंद्र स्थापित किए जाएँ।

(v) महिला कारीगरों के लिए विशेष सहकारी समितियों एवं स्वामित्व-आधारित मॉडलों को प्रोत्साहित किया जाए।

13. उपसंहार

बिहार के कुटीर उद्योगों की यात्रा भारतीय इतिहास के तीन व्यापक चरणों – औपनिवेशिक विऔद्योगीकरण, राष्ट्रवादी पुनर्जागरण तथा स्वतंत्रोत्तर पुनर्निर्माण – का सूक्ष्म प्रतिबिम्ब है। ब्रिटिश शासन ने जिन उद्योगों को संरचनात्मक रूप से कमज़ोर किया, उन्हीं को स्वदेशी आंदोलन एवं गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम ने न केवल पुनर्जीवित किया, बल्कि स्वराज एवं आत्मनिर्भरता का प्रतीक भी बनाया। मधुबनी कला, भागलपुरी रेशम, सिक्की-शिल्प, बाँस-शिल्प तथा खादी – ये केवल आर्थिक वस्तुएँ नहीं, अपितु बिहार की सांस्कृतिक चेतना के प्रतिनिधि हैं।

वर्तमान युग में, जब डिजिटल प्रौद्योगिकी, GI टैग एवं वैश्विक उपभोक्ता-संवेदनशीलता ने पारम्परिक हस्तशिल्प को नया मंच प्रदान किया है, बिहार के कुटीर उद्योगों के पुनर्जागरण की संभावना पहले से कहीं अधिक सशक्त है। आवश्यकता है ऐसी नीतिगत संरचना की जो इन उद्योगों के पारम्परिक चरित्र की रक्षा करते हुए उन्हें आधुनिक बाज़ार-शक्तियों के साथ संगत बना सके। ऐसा कर पाने पर ही कुटीर उद्योग 'आत्मनिर्भर भारत' की दृष्टि के अनुरूप एक न्यायसंगत, समावेशी एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध विकास-मॉडल का आधार बन सकेंगे।

14. शोध की सीमाएँ

यह अध्ययन कई स्तरों पर सीमित है, जिन्हें भविष्य के शोध में आगे विस्तारित करने की आवश्यकता है।

(क) यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों एवं प्रकाशित अभिलेखीय सामग्री पर आधारित है; मौखिक इतिहास (oral history) तथा कारीगर-समुदायों के क्षेत्रीय सर्वेक्षण-आधारित प्राथमिक आँकड़ों का संग्रह नहीं किया गया है। भविष्य के शोध में मधुबनी, भागलपुर एवं सीतामढ़ी क्षेत्रों के जीवित कारीगर-परिवारों के साथ ethnographic अध्ययन इस सीमा को दूर कर सकता है।

(ख) औपनिवेशिक काल की जनगणना रिपोर्टें (1872-1931) पद्धतिगत पूर्वाग्रहों से ग्रसित हैं – विशेषतः महिला-श्रम तथा अनौपचारिक कुटीर गतिविधियों की कम-गणना (under-counting) के संदर्भ में। इसका अर्थ है कि वास्तविक श्रमिक संख्या प्रस्तुत आँकड़ों से अधिक हो सकती है।

(ग) सिक्की कला, टिकुली कला तथा कुछ लघु-शिल्पों के लिए अलग सांख्यिकीय श्रेणियाँ औपनिवेशिक रिकॉर्ड में उपलब्ध नहीं हैं; इनके लिए ज़िला गज़ेटियरों एवं समकालीन रिपोर्टों से अनुमान निकाले गए हैं, जो स्वतंत्र सत्यापन के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकते हैं।

(घ) स्वतंत्रता-पश्चात् काल का सांख्यिकीय विश्लेषण प्रायः खादी एवं ग्रामोद्योग पर केंद्रित है, क्योंकि अन्य व्यक्तिगत हस्तशिल्पों (मधुबनी निर्यात, भागलपुरी रेशम-व्यापार, सिक्की वस्तुओं की बिक्री) के लिए तुलनीय दीर्घकालिक समय-शृंखला (time-series) उपलब्ध नहीं है। इस सीमा को भविष्य के शोध में हस्तशिल्प विकास आयोग एवं निर्यात संवर्धन परिषदों के डेटा से दूर किया जा सकता है।

संदर्भ-सूची (References)

1. आलम, एस. (2003). *बिहार में परम्परागत हस्तशिल्प: एक सामाजिक-आर्थिक अध्ययन*. बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. All India Spinners' Association. (1935). *Annual report of the All India Spinners' Association, 1934-35*. AISA Office.
3. Bagchi, A. K. (1972). *Private investment in India 1900-1939*. Cambridge University Press.
4. भारत सरकार. (2021). *खादी और ग्रामोद्योग आयोग: वर्तमान नीतियाँ एवं विकास योजनाएँ – वार्षिक प्रतिवेदन 2020-21*. सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय, KVIC।
5. Chandra, B. (1966). *The rise and growth of economic nationalism in India: Economic policies of Indian national leadership, 1880-1905*. People's Publishing House.
6. Chatterjee, P. (1986). *Nationalist thought and the colonial world: A derivative discourse*. Oxford University Press.
7. Dasgupta, A. K. (1996). *Gandhi's economic thought*. Routledge.
8. Dutt, R. C. (1902). *The economic history of India under early British rule: From the rise of the British power in 1757 to the accession of Queen Victoria in 1837*. Kegan Paul, Trench, Trübner & Co.
9. Forbes, G. (1996). *Women in modern India*. Cambridge University Press.
10. Gandhi, M. K. (1938). *Hind swaraj or Indian home rule*. Navajivan Publishing House. (Original work published 1909)
11. कुमार, एस. (1990). *बिहार का आर्थिक इतिहास: 1757-1947*. बिहार शोध संस्थान।
12. Kumarappa, J. C. (1945). *Economy of permanence: A quest for a social order based on non-violence*. All India Village Industries Association.
13. Roy, T. (2011). *The economic history of India, 1857-2010*. Oxford University Press.
14. Sarkar, S. (1973). *The Swadeshi movement in Bengal, 1903-1908*. People's Publishing House.
15. Sarkar, S. (1983). *Modern India 1885-1947*. Macmillan India.
16. ठाकुर, बी. (2018). *मधुबनी पेंटिंग और कुटीर उद्योग: एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य*. मिथिला प्रकाशन।
17. Trivedi, L. (2007). *Clothing Gandhi's nation: Homespun and modern India*. Indiana University Press.
18. Virmani, A. (2008). *A national flag for India: Rituals, nationalism, and the politics of sentiment*. Permanent Black.